अंक : 59, भाग : 1, वर्ष : 2013-14
Volume : 59, No. : 1, Year : 2013-14

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका

प्रज्ञा

PRAJÑĀ

"ब्रह्म की ज्योति अपने भीतर ही है,
वह सब जीवधारियों में समान है।"

■ महामना पं. मदन मोहन मालवीय

Published
by
The Banaras Hindu University

PRAJÑĀ
(Journal of the Banaras Hindu University)
Vol. 59, No. 01 (2013-14)
ISSN 0554-9884

© Banaras Hindu University
July 2013

All correspondence should be addressed to
The Editor 'PRAJÑĀ'
BANARAS HINDU UNIVERSITY
VARANASI - 221 005

Printed at
B.H.U. Press
BANARAS HINDU UNIVERSITY

विषय-सूची

1. शास्त्रशुद्ध पञ्चाङ्ग निर्माण की दृष्टि से सूर्यसिद्धान्त की समीक्षा 1
प्रो. सच्चिदानन्द मिश्र

2. साङ्ख्यशास्त्रीय प्रमा एवं अप्रमा 26
आशीष कुमार एवं प्रो. सोमनाथ नेने

3. वैदिक सूक्तों की लोकोपयोगिता— 30
एक धर्मशास्त्रीय परिशीलन
प्रियङ्कर अग्रवाल एवं डॉ. शङ्कर कुमार मिश्र

4. 'संशय की एक रात' में मूल्य-पुनरन्वेषण और पुनःस्थापना 35
शैलेश कुमार एवं प्रो. श्रीनिवास पाण्डेय

5. बाणभट्ट और उनके पात्र वैशम्पायन में साम्य 42
प्रदीप कुमार एवं डॉ. शरदिन्दु कुमार तिवारी

6. सौन्दर्य के परिप्रेक्ष्य में रागों का समय सिद्धान्त 45
रुचि मिश्रा एवं प्रो. ऋत्विक सान्याल

7. नाट्यशास्त्र में वर्णित नारी वस्त्र-अलङ्करण 48
अलका गिरि एवं डॉ. लयलीनाभट

8. लोकगीतों की एक लुप्तप्राय विधा : चउलरि 52
शिव कृपाल मौर्य एवं डॉ. ज्ञानेश चन्द्र पाण्डेय

9. वैधानिक परिप्रेक्ष्य द्वारा महिला सशक्तीकरण 56
वर्षा राय एवं डॉ. जे.एन. सिंह

10. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की साहित्य-दृष्टि : इतिहास... 61
राघवेन्द्र पाण्डेय एवं प्रो. विजय बहादुर सिंह

11. मीराबाई के काव्य में भारत की सामासिक संस्कृति का स्वरूप 65
डॉ. मनोज कुमार सिंह एवं डॉ. ब्रजराज पाण्डेय

12. मराठी दलित साहित्य में स्त्रियों की आत्मकथाएं 70
डॉ. प्रमोद पडवल

13. मालवीय जी की शिक्षा का स्वरूप 73
प्रो. अशोक सिंह एवं विकास सिंह

14. उच्च शिक्षा में हिन्दी माध्यम से अध्यापन
और उसकी चुनौतियाँ 77
सुरेन्द्र प्रताप सिंह एवं प्रो. राधेश्याम राय

15. मानवीय मूल्यों के प्रमुख आयाम और महाप्राण निराला 81
डॉ. उमापति दीक्षित

16. "विनय पत्रिका" में तुलसी की भक्ति भावना 86
डॉ. अवधेश कुमार

17. दलित समस्या और प्रेमचन्द-साहित्य 89
डॉ. राजीव कुमार झा

18. मुगलकाल में गोंड एवं अहोम जनजाति की आर्थिक स्थिति 92
डॉ. रामेश्वर मिश्र एवं डॉ. चूड़ामणि मिश्र

19. 'रामचरितमानस' में सामाजिक पुनर्गठन का स्वरुप 96
डॉ. अनुकूलचन्द राय

20. श्रीसीताजी और बहुद्देशीय हनुमानजी 101
श्रीधनञ्जय प्रसाद शास्त्री

21. बौद्ध धम्म दर्शन में आचार्य वसुबन्धु का योगदान 105
डॉ. मुनिराम तिवारी

22. वेदों में मन का वैज्ञानिक विश्लेषण 108
डॉ. नाहीद आबिदी

23. नारी चेतना का सन्दर्भ और महादेवी वर्मा 112
डॉ. विभा सिंह एवं गरिमा सिंह

24. 'किरन-धेनुएँ' : कविता का शैलीवैज्ञानिक विश्लेषण 115
डॉ. प्रेम निवास सिन्हा

25. पंडित मदन मोहन मालवीय : एक दुर्लभ 125
संवेदनशील व्यक्तित्व
डॉ. नवल किशोर दूबे एवं डॉ. निर्मला किशोर

26. महामना की शिक्षा नीति विशेषतः महिलाओं के संदर्भ में 127
डॉ. रेनू पाण्डेय

27. स्वदेशी की अवधारणा : महामना मालवीय जी के 131
विशेष सन्दर्भ में
डॉ. विनय प्रताप सिंह

28. राष्ट्रीय चेतना के प्रतीक : पं. मदन मोहन मालवीय 135
डॉ. भावना त्रिपाठी

29. भारतीय संस्कृति के उन्नयन के सजग प्रहरी तथा 138
युगद्रष्टा महामना मालवीय जी
डॉ. विनीत नारायण दूबे

30. क़मर रईस की आलोचनात्मक दृष्टि और 144
प्रेमचंद का साहित्य
जमीला बीबी एवं प्रो. रिफअत जमाल

31. राहुल सांस्कृत्यायन और उनका मातृभाषा विषयक प्रेम 147
डॉ. अमित कुमार राय

32. प्राचीन भारत में शिक्षा : दशा एवं दिशा 152
सम्पत कुमार पाण्डेय एवं डॉ. वरद राज पाण्डेय

33. सहृदय का भारतीय संदर्भ 155
डॉ. भारतेन्दु कुमार पाठक

34. अज्ञेय की कहानियों में रचना-प्रतिपाद्य 158
अवनीश कुमार मिश्र

35. आधुनिक चित्रकला में श्रीमद्भगवद्गीता का अंकन 163
रेनू शाही

नाट्यशास्त्र में वर्णित नारी वस्त्र-अलङ्करण

अलका गिरि एवं डॉ. लयलीनाभट***

सौन्दर्य के प्रति मानव का आकर्षण स्वाभाविक है, मनुष्य अपने परिवेश को सदैव सौन्दर्यपूर्ण देखना चाहता है यह अनुभव सिद्ध है कि सौन्दर्यपूर्ण वस्तु व्यक्ति के मन को आनन्दित व प्रफुल्लित करती है। आनन्द के स्रोत के रूप में सौन्दर्य की भूमिका को पहचान कर ही मनुष्य अपने परिवेश के साथ ही स्वयं को भी सुन्दर बनाने के प्रति सजग रहा है साथ ही स्वयं को सुन्दर व आकर्षक बनाने हेतु विभिन्न प्रकार के वस्त्रों एवं आभूषणों का प्रयोग करने लगा।

मानव सभ्यता के प्रारम्भ से ही मनुष्य विभिन्न आकार प्रकार के आभूषणों से अपने को सुसज्जित करता रहा है वस्त्र व आभूषण को श्रृंगार का आवश्यक अंग माना जाता है, सम्भवतः श्रृंगार की प्रबल भावना के कारण ही वस्त्रों एवं आभूषणों का निर्माण एवं उसमें निरन्तर परिष्कार व विकास हुआ। व्यक्ति की कलात्मक अभिरुचि या श्रृंगार प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति के माध्यम के रुप में वस्त्रालंकार सर्वाधिक महत्वपूर्ण रहे है, परिणाम स्वरुप विश्व के सभी देशों, जातियों एवं सभ्यताओं में वस्त्राभूषणों को धारण करने की परम्परा प्रारम्भ से देखने को मिलती है।

वस्त्राभूषणों का प्रयोग संस्कृति का वह पक्ष है जहाँ मनुष्य में जातिगत, धर्मगत, क्षेत्रगत भेद दृष्टिगोचर होता है इसमें यह ध्यान रखना आवश्यक है कि जहाँ आभूषणों का प्रयोग सौन्दर्य की अभिवृद्धि हेतु मुख्य रूप से होता है वहीं वस्त्रों के प्रयोग का मूल प्रयोजन विभिन्न ऋतुओं के विपरीत प्रभाव से शरीर की रक्षा करना होता है।

प्रत्येक सभ्यता अथवा युग के आभूषणों की कुछ निजी विशेषताएँ पाई जाती हैं। जिससे उसके पहनने के तरीके व नाम में भिन्नता पाई जाती है। वस्त्रालंकरणों के प्रयोग में स्त्री-पुरुष व ऊँच-नीच जैसी भेदक रेखा नहीं दिखाई देती है क्योंकि सभी वर्ग या जाति के लोग किसी न किसी प्रकार के वस्त्रालंकारों से स्वयं को अलंकृत करते रहे हैं । अंलकार शिख से नख तक प्रत्येक अंगों पर धारण किये जाते थें। वर्तमान में भी इस प्रकार का प्रयोग पाया जाता है विभिन्न अंगो के अनुरुप वस्त्रालंकारों के आकार प्रकार में भिन्नता होती है। अंलकारों एवं वस्त्रों के निर्माण के समय-परिस्थिति, रुचि तथा आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति आदि तथ्यों का विशेंष रुप से ध्यान रखा जाता है। प्राचीन समय से ही सभ्यता के विभिन्न स्तरों में आभूषणों के प्रति लोगों में विशेष सम्मान का भाव रहा है। काल व क्षेत्र के चलन के अनुसार आभूषणों के निर्माण के माध्यम बदलत रहे हैं जिसमें प्रकृति से प्राप्त फूल-पत्ती, पशुओं के सींग व हड्डी, पक्षियों के रंग बिरंगे पंखों, के साथ ही मूल्यवान धातु व रत्नों तक का प्रयोग मिलता है। विलासिता, श्रृंगार, प्रसाधन, अलंकरण व वस्त्रों की सुव्यवस्थित परम्परा सदियों से रही हैं जिसका जीवन साक्ष्य अनेक संस्कृत ग्रन्थों में प्राप्त होता है जिसमें से आचार्य भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र प्रमुख ग्रन्थ है।

नाट्यशास्त्र आचार्य भरतमुनि कृत (ईसा पूर्व दूसरी शती से दूसरी शती ईस्वी) नाट्य विषयक ग्रन्थ है। सामाजिक जीवन में स्त्री पुरुष अपनी रुचि के अनुसार वस्त्राभूषण धारण करते हैं किन्तु नाट्य में अभिनेता की रुचि के अनुसार नहीं वरन् अभिनीत किये जाने वाले पात्र के अनुकूल ही वेशभूषा धारण करना आवश्यक होता है, जो नाट्य द्वारा होने वाली रस निष्पत्ति में सहयोग करे। पात्र के अनुकूल से तात्पर्य है पात्र के चरित्र के अनुरुप, जिसमें पात्र की सामाजिक, आर्थिक तथा मानसिक स्थिति का बोध हो। नाट्यशास्त्र में सभी प्रयोग को आहार्य पर निर्भर बताते हुए ही आचार्य भरतमुनि ने कहा है।

'यस्मात् प्रयोगः सर्वोऽयमाहार्याभिनये स्थितः।'

(ना.शा.21/भाग 3/श्लोक 1)

नाट्य में वस्त्रालंकारों का विशेष महत्व होने के कारण ही नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने एक अध्याय (आहार्याभिनय) के अन्तर्गत वस्त्राभूषणों की विस्तृत व्याख्या की है जिसमें उन्होनें काल, स्थान, अवस्था, लिंग, के अनुसार वस्त्रों एवं आभूषणों का विभाजन किया है। जितने विस्तृत रुप से भरतमुनि ने विभागों के अनुसार वस्त्राभूषणों की व्याख्या की है वह किसी अन्य ग्रन्थ में प्राप्त नहीं है।

स्त्रियों का आभूषणों एवं सुसज्जित वस्त्रों के प्रति आकर्षण व लगाव सर्वविदित है, कविता और वनिता (स्त्री) दोनों के शोभावर्धन में अलंकारों का महत्व बताते हुए ब्रजभाषा के रीतिकालीन कवि केशवदास का प्रसिद्ध कथन है—

"भूषण बिन न विराजई कविता वनिता मित्त"।

साथ ही भामहकृत काव्यालंकार में स्त्रियों के आभूषणों के महत्व को बताते हुए कहा गया है—

"न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनितामुखम्"।

*शोध छात्रा, नृत्य विभाग, संगीत एवं मंचकला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
**एसोसिएट प्रोफेसर, नृत्य, महिला महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

अर्थात बिना आभूषण के वनिता (स्त्री) का सुन्दर मुख भी सुशोभित नहीं होता है।

भरतमुनि ने भी नाट्यशास्त्र के आहार्याभिनय के अन्तर्गत स्त्रियों द्वारा प्रयोग में लाये जाने वाले वस्त्रों एवं आभूषणों की **आयु, अवस्था व प्रकृति** आदि के अनुसार विस्तृत व्याख्या की है।

नाट्यशास्त्र में आभूषणों को चार वर्गों यथा- **आवेध्य, बन्धनीय, प्रक्षेप्य एवं आरोप्य** में विभाजित किया है—

"चतुर्विधं तु विज्ञेयं नाट्ये ह्याभरणं बुधैः ।
आवेध्यं बन्धनीयं च क्षेप्यमारोप्यमेव च॥
आवेध्यं कुण्डलादीह यत्स्यात् श्रवणभूषणम् ।
आरोप्यं हेमसूत्रादिहाराश्च विविधाश्रयाः॥
श्रोणीसूत्राङ्गदामुक्ता बन्धनीयानि सर्वदा।
प्रक्षेप्यं नूपुरं विद्याद्वस्त्राभरणमेव च"॥

(ना. शा. 21/श्लोक 12-14)

1. **आवेध्य–** आवेध्य के अन्तर्गत भरतमुनि ने उन आभूषणों का समावेश किया है जो शरीर को बींधकर अर्थात छेद करके धारण किये जाते हैं जैसे- नाक व कान के आभूषण
2. **आरोप्य–** जो आभूषण शरीर पर आरोपित किये जाते है जैसे- कण्ठाभूषण, मणिमाला (विभिन्न प्रकार के हार), वक्ष के आभूषण आदि इसी श्रेणी में आते है।
3. **प्रक्षेप्य–** ऐसे आभूषण जो शरीर पर रख लिये जाते हैं अथवा धारण कर लिये जाते हैं उसे प्रक्षेप्य आभूषण कहते है जैसे- अंगूठी, नूपुर, किंकिणी आदि।
4. **बन्धनीय–** ऐसे आभूषण जो अंगो में बाँधकर प्रयोग किये जाते हैं जैसे अंगद, केयूर, करधनी, मेखला आदि का बंधनीय आभूषणों के अन्तर्गत समावेश किया जाता है।

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में इन चार वर्गों के आभूषणों का विवरण देने के पश्चात् स्त्रियों एवं पुरुषों के अंग एवं उपांग में धारण करने योग्य आभूषणों का विस्तृत वर्णन किया है। भरतमुनि ने स्त्रियों के विविध आभूषणों को विस्तार से बताया है। जिससे स्त्रियों की आभूषण प्रिय प्रवृत्ति प्रदर्शित होती है।

इन्होंने स्त्रियों के लिए विभिन्न अवस्थाओं, सामाजिक व आर्थिक दशा आदि के आधार पर वस्त्राभूषणों का विभाजन किया है। नाट्यशास्त्र के अनुसार स्त्रियों के आभूषण इस प्रकार है।

शिरोभूषण

शिखापाशं शिखाव्यालः पिण्डीपत्रं तथैव च।
चूडामणिर्मकरिका मुक्ताजालगवाक्षिकम्॥
शिरसो भूषणं चैव विचित्रं शीर्षजालकम्।
कण्डकं शिखिपत्रं च वेणीपुच्छः सदोरकः॥
ललाटतिलकंचैव नानाशिल्पप्रयोजितम् ।
भ्रूगुच्छोपरिगुच्छश्च कुसुमानुकृतिस्तथा॥

(ना0शा21/श्लोक22-24)

भरतमुनि ने शिखापाश, शिखाव्याल, पिण्डीपत्र, चूड़ामणि, मकरिका, मुक्ताजाल गवाक्ष एवं विभिन्न प्रकार के शीर्षजाल को शिरोभूषण के रूप में निर्देशित किया है। शिखापाश व शिखाव्याल मस्तक के ऊपर बालों में धारण किया जाता था। शिखाव्याल नाग के जोड़े के स्वरूप में बनाया गया अलंकार होता था। सिर के मध्य नागफनों के साथ गोल आकार के पत्तों से युक्त अलंकार मकरिका एवं मोतीयों के द्वारा मछली के आकार में बना जालनुमा आभूषण मुक्ताजाल कहलाता है। फूलो के गुच्छ के आकार के गुच्छक भौहों के आभूषण हैं।

कर्णाभूषण

कर्णिका कर्णवलयं तथा स्यात्पत्रकर्णिका।
कुण्डलं कर्णमुद्रा च कर्णोत्कीलकमेव च॥
नानारत्नविचित्राणि दन्तपत्राणि चैव ही।
कर्णयोर्भूषणं ह्येतत्कर्णपूरस्तथैव च ॥

(ना. शा. 21/श्लोक 25-26)

कर्णिका, कर्णवलय, पत्रकर्णिका कुण्डल, कर्णमुद्रा, शिखिपत्र (मोर के पूंछ के आकार में विभिन्न रंग की मणियों से निर्मित अलंकार शिखिपत्र कहलाता है) कण्डक, कर्णोत्कीलक विभिन्न रत्नों ने निर्मित दन्तपत्र एवं कर्णफूल को कर्णाभूषण के रूप में बताया है। (दन्तपत्र हाथी के दांत या रत्नों का बना होता था)

गण्डविभूषण

भरत मुनि ने स्त्रियों के गण्ड (कपोल) हेतु तिलक एवं पत्रलेखा नामक अलंकार को बताया है

नेत्र व अधरके आभूषण

काजल को नेत्रों का आभूषण समझना चाहिए तथा रंग (रंजन) को अधरों (होठों) का आभूषण समझना चाहिए। (रंजन वर्तमान में लिपस्टिक)।

भरतमुनि के अनुसार अश्मराग कमल के समान रक्त रंग में रंगे होठ नवपल्लव के समान वर्ण (रंग) के होने से उनकी शोभा बढ़ जाती है। अर्थात मुग्धा युवतियों के ओठ भी रंगने के कारण ताम्रपल्लव के समान लाल वर्ण हो तो उनका विलास एवं रागपूर्ण अवलोकन बड़ा ही प्रिय लगता है तथा यह सौन्दर्य को और भी निखार देता है।

कण्ठाभूषण

मुक्तावली व्यालपङ्क्तिर्मञ्जरी रत्नमालिका।
रत्नावलीसूत्रकंच ज्ञेयं कण्ठविभूषणम्॥
द्विसरस्त्रिसरश्चैव चतुस्सरकमेव च।
तथा शृङ्खलिका चैव भवेत् कण्ठविभूषणम् ॥

(ना0शा0,21/31-33)

आचार्य भरत ने स्त्रियों के कण्ठ हेतु मुक्तावली, व्यालपंक्ति (सर्प के स्वरूप या आकार का आभूषण), मञ्जरी, रत्नमालिका, सूत्रक, दो, तीन व चार लड़ी वाली ऋङ्खलिका (चेन) आदि आभूषण निर्देशित किया है।

भुजाओं के आभूषण

अङ्गदं वलयञ्चैव बाहुमूलविभूषणम् ।

(ना. शा. 21/33)

अंगद तथा वलय बाहुमूल में अर्थात बाहु के उपरी भाग कुहनी के ऊपर धारण करने के आभूषण हैं वर्तमान में अंगद और वलय को अनन्त और बाजूबन्द नाम से जाना जाता है। वर्तमान में भी इनका प्रयोग किया जाता है।

वक्षस्थल एवं स्तनों के आभूषण

ना शिल्पकृतापश्चैव हारा वक्षोविभूषणम्।
मणिजालावनद्धं च भवेत् स्तनविभूषणम्॥

(ना. शा. 21/श्लोक 34)

नाना प्रकार की कारीगरी से तैयार किये गये हार वक्षस्थल के आभूषण होते हैं तथा बहुत सी मणियों की जाली से गुम्फित आभूषण स्तनों की शोभा बढ़ाने वाले होते हैं।

बाहु एवं अंगुलियों के आभूषण

खर्जूरकं सोच्छितिक बाहुनालीविभूषणम्।
कलापी कटकं शङ्खो हस्तपत्रं सपूरकम्॥
मुद्रांगुलीयकं चैव ह्यगुंलीनां विभूषणम्।

(ना0शा21/श्लोक35-36)

उच्छाय से युक्त खर्जूर नामक आभूषण बाहु के सीधे भाग पर अर्थात बाहुनाल में कुहनी के नीचे व मणिबन्ध के ऊपर धारण किया जाने वाला आभूषण है। कलापी, कटक, शंक (शंख के आकार का आभूषण) हस्तपत्र पूरक और मुद्रा के आकार का अंगुलीयक (अंगूठी) अंगुलियों के आभूषण के रूप में भरतमुनि ने निर्देशित किया है।

कटि आभूषण

मुक्ताजलाद्यतिलकं मेखला काञ्चिकापि वा।
रशना च कलापश्च भवेच्छ्रोणी विभूषणम्॥
एकयष्टिर्भवेत्काञ्ची मेखला त्वष्टयष्टिका।
द्विरष्टयष्टी रशना कलापः पञ्चविंशकः॥

(ना. शा. 21/श्लोक36-38)

आचार्य भरत ने स्त्रियों के कटि आभूषण के कई प्रकार बताये हैं जैसे-मोतियों के जाल से युक्त काञ्ची जो कि एक सर (लड़ी) की होती है, मेखला आठ सरों की, रशना सोलह सरों की, कलाप पच्चीस सरों की होती है। वर्तमान में भी ये आभूषण प्राप्त होते है तथा ये सभी कलाप, रशना, कांची आदि करधनी या कमरबन्द के नाम से जाने जाते हैं।

पादाभूषण

नुपूरः किङ्किणीकाश्च घण्टिका रत्नजालकम्।
सघोषे कटके चैव गुल्फोपरिविभूषणम्॥
जङ्घयोः पादपत्रं स्यादङ्गुलीष्वङ्गुलीयकम्।
अङ्गुष्ठतिलकाश्चैव पादयोश्च विभूषणम्॥
तथालक्तकरागश्च नानाभक्तिनिवेशितः।
अशोकपल्लवच्छायः स्यात् स्वाभाविक एव च॥

(ना0शा21/श्लोक39-42)

आचार्य भरत ने स्त्रियों के गुल्फ (पैर का टखना) के आभूषण के रूप में नूपुर, किंकीणी, रत्नजाल, घण्टिका, सघोषे (वलय या कड़ा, जो खोखला आभूषण होता है तथा जिसके अन्दर कंकड़ होते हैं जो कि चलने या गति करने पर ध्वनि उत्पन्न करते हैं) आदि को निर्देशित किया है। नूपुर जो सर्वप्रयोज्य व सर्वसुलभ है किन्तु सघोषे वर्तमान में भी आदिवासी स्त्रियों द्वारा पैर के आभूषण के रूप में प्रयोग किया जाता है।

इसके अतिरिक्त नाट्यशास्त्र में पैर के अन्य आभूषण के रूप में अलक्तक या महावर को 'शामिल किया गया है जो कि अशोक पल्लव की कान्ति के समान रक्तवर्ण होना चाहिए। महावर का प्रयोग दोनों पैरों में अनेक प्रकार की कलात्मक रेखाओं को अंकित करके किया जाना चाहिए।

एतद्विभूषणं नार्या आकेशादानखादपि।

(ना0शा21/श्लोक 42)

इस प्रकार भरत ने स्त्रियों के शिर से लेकर पैरों के नख तक के लिये आभूषणों की व्याख्या की है

भरतमुनि के अनुसार

विभागतोऽभिप्रयुक्तमंगशोभाकरं भवेत् ।

अर्थात विभागों के अनुसार आभूषणों का प्रयोग होने पर ही वह अंगों को शोभा बढ़ाता है तात्पर्य है की समयानुकूल एवं

आवश्यकतानुसार इन आभूषणों का प्रयोग उपयुक्त स्थानों पर किये जाने से ही अंगों की शोभा होती है।

विभागों के अनुसार देवांगनाओं व राजांगनाओं द्वारा 32,64, 100 एवं 108 मोतियों का हार प्रयोग किया जाता है। राक्षसियों का आभूषण "इन्द्रनीलमणि" का होना चाहिए, देवांगनाओं के आभूषण "वैदूर्यमणि" (लहसुनिया) जटित एवं गन्धर्व कन्याओं द्वारा "पद्मरागमणि" निर्मित आभूषण का प्रयोग किया जाना चाहिए। गणिकाओं को इच्छानुसार अलंकरण का प्रयोग करना चाहिए। शोक के अवस्था में स्त्रियों द्वारा चमत्कार पूर्ण एवं आकर्षक आभूषण धारण नही करना चाहिए, विप्रलम्भ अवस्था में बहुत कम आभूषणों का प्रयोग करना चाहिए।

भरतमुनि के अनुसार इन आभूषणों को हल्के वजन का बनाने के साथ ही प्राकृतिक पदार्थों जैसे-लाख, अभ्रक आदि के प्रयोग द्वारा बनाना चाहिए जिससे नाट्य प्रस्तुति के समय अंग संचालन में वह किसी प्रकार का व्यवधान उत्पन्न न करें।

स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त वस्त्र

जिस प्रकार नाट्य शास्त्र में विभिन्न विभागों एवं अवस्था के अनुसार आभूषणों की व्याख्या की गयी है उसी प्रकार वस्त्र का प्रयोग भी विभाग के अनुसार पाया जाता है। भरतमुनि ने तीन प्रकार के वस्त्रों की व्याख्या की है- शुद्ध, विचित्र, मलिन।

1. **शुद्ध** : इसमें सफेद रंग की योजना अधिक होती है एवं सफाई पर विशेष ध्यान दिया जाता है।
2. **विचित्र** : देव, दानव, यक्ष, राक्षस तथा कामुक राजा का वेश विचित्र होना चाहिए।
3. **मलिन** : उन्मत, प्रमत्त, पथिक तथा विपत्तिग्रस्त पात्र का वेश मलिन होना चाहिए।

इन तीनों प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग स्त्रियों द्वारा विभिन्न अवस्था प्रकृति, देश, काल व जाति के अनुसार किया जाता है। विद्याधरी, यक्षिणी, अप्सरा, नागपत्नी, ऋषिकन्या एवं देवाङ्गनाओं के वस्त्र एक दूसरो से भिन्न नजर आते है। विद्याधरियों के वस्त्र शुद्ध एवं यक्षिणी, अप्सराओं, देवाङ्गनाओं व राक्षसी का वस्त्र विचित्र होना चाहिए। ऋषि कन्या द्वारा वनोचित वस्त्र धारण करना चाहिए। सिद्ध स्त्रियों द्वारा पीले रंग का वस्त्र, गन्धर्व कन्याओं द्वारा कुसुम्भी रंग व राक्षसियों द्वारा काले रंग के वस्त्र धारण किये जाने चाहिए। देवाङ्गनाओं द्वारा तोते (शुक) के पंख के समान हरे रंग का वस्त्र धारण किया जाना चाहिए। दिव्य नारियों द्वारा नीले वस्त्र पहनने चाहिए साथ ही इनका वेश श्रृंगारमय होना चाहिए। प्रोषित कन्याओं व विपत्ति से घिरी नारी के वस्त्र मलिन होने चाहिए व केश बिखरे होने चाहिए। वृद्ध, ब्राह्मण, अमात्य, व्यापारी, तपस्वी, मांगलिक अवसर पर एवं मंदिर जाते समय स्त्रियों द्वारा शुद्ध वस्त्र धारण किया जाना चाहिए।

भरतमुनि ने सभी स्त्रियों के वस्त्रों हेतु विशेष रंगों का वर्णन किया है किन्तु ऋषिकन्या हेतु किसी विशेष रंग का उल्लेख नहीं किया है, केवल ऐसा कहा है कि उन्हें वनोचित वस्त्र व आभूषण धारण करना चाहिए।

इस प्रकार कह सकते हैं कि वस्त्राभूषण स्त्रियों के सौन्दर्य वृद्धि के साथ-साथ किसी भी देश की सांस्कृतिक परिस्थिति, सामाजिक स्थिति, आर्थिक स्थिति, देशकाल आदि को चिन्हित करने का एक सबल माध्यम है। नाट्य में वस्त्राभूषणों का प्रयोग देश व अवस्था के अनुसार किया जाना चाहिए जैसे— उर्वशी, अप्सरा, पात्र हेतु विचित्र वस्त्र के साथ विभिन्न रत्नों से जड़ित आभूषणों का प्रयोग एवं ऋषि कन्या जैसे— शकुन्तला आदि पात्र हेतु वल्कल वस्त्र के साथ फूलों के आभूषणों का प्रयोग किया जाना चाहिए। जिससे उनके प्रकृति एवं स्थिति में भिन्नता दर्शाया जा सके एवं दर्शकों में उचित रूप से भाव का संचार किया जा सके।

उपर्युक्त व्याख्या को देखते हुए कह सकते है कि जितने विस्तार से नारी आभूषणों का वर्णन नाट्यशास्त्र में मिलता है वह किसी अन्य ग्रन्थ में शायद प्राप्त हो। अलंकरणों का विभाजन जिस विभाग (अवस्था, आयु, लिंग, स्थिति आदि) के अनुसार इसमें किया गया है वह वर्तमान में भी उपयुक्त प्रतीत होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थसूची

1. नाट्यशास्त्र, तृतीय भाग (अध्याय-21) आचार्य मधुसुदन शास्त्री
2. नाट्यशास्त्र, तृतीय भाग (अध्याय-21) पारसनाथ द्विवेदी
3. सविता ओझा-आहार्य अभिनय
4. प्राचीन भारत में रूप श्रृंगार-भावना आचार्य
5. नाट्यशास्त्र- (अध्याय-23) बाबूलाल शुक्ल
6. भरत और भारतीय नाट्य कला – डॉ. सुरेन्द्रनाथ दीक्षित